करुणा : जीवकी एक शुभ परिणति

करुणाको सभी धर्मोंमें स्वीकार किया गया और उसे धर्म माना गया है। जैन धर्ममें भी वह स्वीकृत है। परन्तु वह जीवके एक शुभ भाव (परिणाम) के रूपमें अभिमत है। उसे धर्म नहीं माना। धर्म तो अहिंसाको बताया गया है। अहिंसा और करुणामें अन्तर है। अहिंसामें रागभाव नहीं होता। वह भीतरसे प्रकट होती है और स्वाभाविक होती है। अतएव वह आत्माकी विशुद्ध परिणति मानी गयी है। पर करुणा जीवके, रागके सद्भावमें, बाहरका निमित्त पाकर उपजती है। अतएव वह नैमित्तिक एवं कादाचित्क है, स्वाभाविक तथा शाश्वत नहीं।

करुणा, अनुकम्पा, कृपा और दया ये चारों शब्द पर्यायवाची हैं, जो अभाव अथवा कमीसे पीड़ित प्राणीकी पीड़ाको दूर करनेके लिए उत्पन्न रागात्मक सहानुभूति अथवा सहानुभूतिपूर्वक किये जानेवाले प्रयत्नके अर्थमें व्यवहृत होते हैं। आचार्य कुन्दकुन्दने करुणाका स्वरूप निम्न प्रकार दिया है—

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥[1]

'जो प्याससे तड़फ रहा है, भूखसे विकल हो रहा है और असह्य रोगादिकी वेदनासे दुःखी हो रहा है उसे देखकर दुःखी चित्त होना अनुकम्पा—करुणा है।'

इसकी व्याख्यामें व्याख्याकार अमृतचन्द्राचार्य और जयसेनाचार्यने लिखा है—

'कञ्चिदुदन्यादिदुःखप्लुतमवलोक्य करुणया तत्प्रतिचिकीर्षाकुलितचित्तत्वमज्ञानिनोऽनुकम्पा। ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनः खेद इति।'

'करुणा पात्रभेदसे दो प्रकारकी है—एक अज्ञानीकी और दूसरी ज्ञानीकी। अज्ञानीकी करुणा तो वह है जो प्यास आदिके दुःखसे पीड़ितको देखकर दयाभावसे उसके दुःखको दूर करनेके लिए चित्तमें विकलता होती है। उसकी यह करुणा चूँकि उस प्यासादिसे दुःखी प्राणीके भौतिक शरीर सम्बन्धी दुःखको ही दूर करने तक होती है—उसके आध्यात्मिक (राग, द्वेष, मोहादि) दुःखको दूर करनेमें वह अक्षम है। अतएव वह अज्ञानीकी करुणा अर्थात् स्थूल करुणा बतलायी गयी है। जिसे शरीर और आत्माका भेदज्ञान हो गया है, पर अभी बहुत ऊँचे नहीं पहुँचा है—कुछ नीचेकी श्रेणियोंमें चल रहा है, उस ज्ञानी (साधु, उपाध्याय और आचार्य) को जन्म-सन्ततिके अपार दुःखोंमें डूबे प्राणियोंको देखकर जो उनके दुःखकी निवृत्तिके लिए कुछ खेद होता है वह ज्ञानीकी करुणा है और उपर्युक्त अज्ञानीकी करुणासे वह सूक्ष्म एवं विवेकपूर्ण है। किन्तु उसमें ईषत् रागभाव रहता ही है, भले ही वह लक्ष्यमें न आये। और इसलिये अज्ञानी और ज्ञानी दोनोंकी करुणाएँ पुण्यकर्मके आस्रवकी कारण हैं।

कुन्दकुन्दने पुण्यास्रवका स्वरूप इस प्रकार दिया है—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्ते णत्थि कलुस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥[2]

१. पंचास्तिकाय, गाथा १३७।   २. पंचास्ति०, गा० १३५।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

'जिसके शुभ राग है, अनुकम्पा (दया) रूप परिणाम है और चित्तमें अकलुषता है उसके पुण्यका आस्रव (आयात) होता है।'

यहाँ दृष्टव्य है कि कुन्दकुन्दने अनुकम्पारूप परिणामको स्पष्टतया पुण्यकर्मके आगमनका कारण बतलाया है। इसका अर्थ है कि जैन धर्ममें अनुकम्पा जीवका एक शुभ भाव मात्र है, जिसमें रागांश रहनेके कारण वह पौद्गलिक पुण्यरूप कर्मका जनक है। और जो कर्मका जनक है वह धर्म नहीं हो सकता। अतएव करुणा पुण्यकर्मका कारण होनेसे धर्म नहीं है। अहिंसा, जो आत्मामें भीतरसे विकसित होती है, फूटती है, अनाकुला, स्थायिनी, स्वाभाविकी और स्व-परसुखदायिनी है—दुःख तो उससे किसीको होता नहीं, धर्म है। वस्तुका निज स्वभाव ही धर्म होता है और अहिंसा आत्माका निज स्वभाव है। वह अनैमित्तिक (अनौपाधिक) है और करुणा नैमित्तिक (औपाधिक) है। दुःखी व्यक्ति जब सामने उपस्थित होता है तभी कारुणिकके चित्तमें करुणा जन्म लेती है। अहिंसाका स्रोत, ज्यों-ज्यों मोह और आवरण हटते जाते हैं, खुलता जाता है, सदा बहता रहता और बढ़ता जाता है। दुःखी व्यक्ति अहिंसकके सामने उपस्थित हो, चाहे न हो। सम्भवतः करुणा और अहिंसाके इसी सूक्ष्म अन्तर एवं रहस्यको लक्ष्य करके योगसूत्रकार महर्षि पतञ्जलिने भी अहिंसाको सर्वाधिक महत्त्व दिया और कहा कि **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः'** (यो० सू० २-३५) अहिंसाकी आत्मामें प्रतिष्ठा होनेपर समस्त प्रकारका वैर (रंजिस) छूट जाता है और अहिंसकके समक्ष विश्वके समस्त प्राणी आत्मवत् हो जाते हैं।

जैन दार्शनिक आचार्य विद्यानन्दने करुणाको मोहविशेष (इच्छाविशेष) रूप बतलाते हुए लिखा है :—**'तेषां मोहविशेषात्मिकायाः करुणायाः सम्भवाभावात्'**—(अष्टस० पृ० २८३)—करुणा मोहविशेष (इच्छा) रूप है। वह वीतरागों (केवलियों) में सम्भव नहीं है। जब विद्यानन्दसे प्रश्न किया गया कि बिना करुणाके वीतरागोंकी दूसरोंके दुःखकी निवृत्तिके लिए किये जानेवाले हितोपदेशमें प्रवृत्ति कैसे होगी? इसका वे सयुक्तिक समाधान करते हुए कहते हैं—**'स्वभावतोपि स्वपरदुःखनिवर्त्तननिबन्धनत्वोपपत्तेः प्रदीपवत्'** (वही पृ० २८३)—जिस प्रकार दीपक बिना करुणाके दुःखहेतु अन्धकारकी निवृत्ति स्वभावतः करता है उसी प्रकार वीतराग भी बिना करुणाके स्वपरदुःखकी निवृत्ति स्वभावतः करते हैं। विश्रुत जैन मनीषी अकलङ्कदेव भी उक्त प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं—

> 'न वै प्रदीपः कृपालुतयात्मानं परं वा तमसो निवर्त्तयति। कल्पयित्वापि कृपालुतां तत्करणस्वभावसामर्थ्यं मृग्यम्। एवं हि परम्परापरिश्रमं परिहरेत्।'—अष्टश० अष्टस० पृ० २८३।

क्या नहीं जानते कि दीपक कृपालु होनेसे स्वपरके अन्धकारको दूर नहीं करता, अपितु उसका उक्त प्रकारका स्वभाव होनेसे वह उभयका अन्धकार मिटाता है। वीतराग भी कृपालुताके कारण स्वपरके दुःखकी निवृत्ति नहीं करते, किन्तु उनका उस प्रकारका स्वभाव होनेसे स्वपरके दुःखको दूर करनेके लिए प्रवृत्त होते हैं। यदि करुणासे दुःखनिवृत्तिपर बल दिया जाय तो वीतरागोंके करुणा माननेपर भी उनका स्वपरदुःखके निवर्त्तनका स्वभाव अवश्य मानना पड़ेगा। अतः क्यों नहीं, वीतरागोंके करुणाके विना भी उक्त स्वभाव ही माना जाय।

विद्यानन्द यौक्तिक समाधानके अलावा आगमिक समाधान भी करते हैं—

> ततो निःशेषान्तरायक्षयादभयदानस्वरूपमेवात्मनः 'प्रक्षीणावरणस्य परमा दया। सैव मोहाभावाद्रागद्वेषयोरप्रणिधानादुपेक्षा। तीर्थकरत्वनामोदयात्तु हितोपदेशप्रवर्त्तनात् परदुःखनिराकरणसिद्धिः।'—अष्टस० पृ० २८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्ण अन्तरायके क्षयसे वीतरागोंके जो आत्माका अभयदान स्वरूप प्रकट होता है वही उनकी परमा दया है और वह दया उनके मोहाभावमें होती है, क्योंकि उस समय उनके न किसीके प्रति राग होता है और न किसीके प्रति द्वेष। इसके सिवाय वीतरागोंकी हितोपदेशमें प्रवृत्ति उनके विद्यमान तीर्थंकरनाम-कर्मके उदयसे होती है और उस हितोपदेश-प्रवृत्तिसे ही परदुःखनिराकरण सिद्ध हो जाता है। अतः जैन धर्ममें अर्हतों (वीतरागों) की हितोपदेशमें प्रवृत्ति बुद्ध या ईश्वरकी तरह करुणासे स्वीकार नहीं की गयी। अतएव जैन दर्शनमें वीतराग परमात्माको अहिंसक माना गया है, कारुणिक नहीं। आचार्य समन्तभद्रने अहिंसाको जगद्विदित परमब्रह्म बतलाया है—'**अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्**।'—(स्वयम्भू०)

इस प्रकार कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्क, विद्यानन्द जैसे युगप्रधान समर्थ शास्त्रकारोंके विवेचनसे अवगत होता है कि करुणा मोहविशेष (शुभेच्छा) रूप होनेसे वह परमार्थतः धर्म नहीं है—वह आत्माका एक विकार ही है। शुभपरिणतिरूप होनेसे करुणाको व्यवहारतः धर्म कहा गया है। कुन्दकुन्दने स्पष्ट कहा है कि करुणासे पुण्यसंचय होता है। इस पुण्यसे भोग प्राप्त होते हैं और भोगोंसे आसक्ति तथा आसक्ति जन्म-जन्मान्तरोत्पत्तिका कारण है। शास्त्रोंमें कहीं-कहीं '**धर्मस्य मूलं दया**' जैसे प्रतिपादनों द्वारा जो दयाको धर्मका मूल या धर्म कहा गया है वह केवल अशुभसे निवृत्ति तथा शुभमें प्रवृत्ति करानेके प्रयोजनसे कहा है। जिससे व्यक्ति अशुभसे बचा रहे और शुभमें प्रवृत्त रहे। शुभसे शुद्धकी ओर जाया जा सकता है। अतः जैनधर्ममें व्यवहार और निश्चय अथवा उपचार और परमार्थ या उपाधि और निरुपाधि इन दो दृष्टियोंको ध्यानमें रख कर प्रतिपादन है। निष्कर्ष यह कि करुणा व्यवहारतः धर्म है, परमार्थतः नहीं। परमार्थतः अहिंसा धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org